प्राक् कथन

षट्खंडागमका तीसरा भाग अप्रेल १९४१ में प्रकाशित हुआ था। वर्ष पूरा होते होते उसका चौथा भाग भी तैयार होकर पाठकोंके हाथमें पहुंच रहा है। इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका संतोष है। विद्वत्समाज अब इस ओर कितना उत्सुक और तत्पर हो उठा है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसी अल्पकालमें हमें इस सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें पंडिताचार्यवर्य भट्टारक चारुकीर्तिजी स्वामी तथा पंचोंकी कृपासे मूडबिद्री संस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जिससे अब सिद्धान्तग्रंथका मूल पाठ वहांकी ताडपत्रीय प्रतियोंके मिलान परसे ही निश्चित किया जाता है। इस कारण अब इतर प्रतियोंके मिलान प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी बीच द्वितीय सिद्धान्तग्रंथ कषायप्राभृत और उसकी टीका जयधवलाके प्रकाशनके लिये भी एक नहीं अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठी हैं, और जैनसंघ, मथुरा, ने उस ओर कार्य प्रारंभ भी कर दिया है। उधर शोलापुरवाले स्वर्गीय सेठ रावजी सखारामजी दोशीके संरक्षणमें जो सिद्धान्तोद्धारसंबंधी फंड था, उसकी उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी सेठ गुलाबचंद्रजीने सुव्यवस्था करके महाधवलके निमित्त एक समिति सुसंगठित कर दी है। यही नहीं, श्रीयुक्त मंजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताडपत्रीय प्रतियोंके अनुसार प्रकाशित करानेकी भी एक स्कीम प्रस्तुत की है। साहित्योद्धारके महत्व और उसकी आवश्यकताको अनुभव करके शोलापुरके अत्यन्त धर्मानुरागी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशीने गम्भीर विचार और विद्वत्परामर्शके पश्चात 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' का आयोजन किया है, और उसके लिये अपनी ओरसे तीस हजारका दान भी दे दिया है। इस संघका ध्येय बहुत विशाल और सर्वांगव्यापी है, जिसकी पूर्ति धीरे धीरे ही हो सकती है तथा समाजके सहयोगपर अवलम्बित है। किन्तु उसके अन्तर्गत जो एक 'जीवराज जैन ग्रंथमाला' के संचालनका निश्चय किया गया था, उसका मेरे प्रियमित्र डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय और मेरे सम्पादकत्वमें कार्य प्रारंभ हो गया है, और उस मालाका प्रथम पुष्प, उक्त सिद्धान्तग्रंथोंकी ही कोटिका प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ 'तिलोयपण्णत्ति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) मुद्रणाधीन है। इस प्रकार यह सिद्धान्तोद्धारका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अब अनेक कंधोंद्वारा सम्हाला जा रहा है, जिससे हमें अब अपना बोझ कुछ हलका हुआ प्रतीत होने लगा है। इसकी हमें प्रसन्नता है।

किन्तु गतिके साथ गति-अवरोधोंके प्रयत्नोंका भी सर्वथा अभाव नहीं है। प्रकाशित सिद्धान्त ग्रन्थोंकी धार्मिक ज्ञानवृद्धिमें बडी भारी उपयोगिताका अनुभव करके बंबईकी माणिकचंद्र जैन परीक्षालय समितीने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्प्ररूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठचक्रममें सम्मिलित करना आवश्यक समझा। इसका अधिकांश पाठकों और विद्यार्थियोंने बड़ा हर्ष मनाया। किन्तु, मोरेना जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान

अध्यापक पं. मक्खनलालजी शास्त्रीने इसका घोर विरोध प्रारंभ कर दिया है। उन्होंने 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी है जिसमें उन्होंने यह बतलानेका प्रयत्न किया है कि गृहस्थ जैनियोंको इन सिद्धान्तग्रंथोंके पढ़नेका बिलकुल अधिकार नहीं है और इसलिये इनका पढ़ना पढाना व छपाना एकदम बंद कर देना चाहिये। इस पुस्तिकाके आधारसे जैन पाठशालाओंके अध्यापकोंके ऐसे मत संग्रह करनेका भी प्रयत्न किया जा रहा है कि वे धवल, जयधवल, महाधवल, इन सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन-पाठन नहीं करेंगे। अपनी अपनी समझ और विवेकके अनुसार तो प्रत्येकको अपना मत बनाने और उसका प्रचार करनेका अधिकार है, किन्तु उक्त पुस्तिकामें जो इस मतके लिये प्राचीन प्रमाण दिये गये हैं, उनसे साधारण पाठकोंको एक भ्रम पैदा हो जानेकी संभावना है। अतएव हमने यह आवश्यक समझा कि हम अपने पाठकोंके लिये उन प्राचीन प्रमाणोंकी जांच पड़ताल करके अपना निष्कर्ष उनके सन्मुख रख दें, ताकि वे उक्त मतकी सारहीनताको समझ जावें। हमारे इस विवेचनको पाठक प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनामें 'सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक लेखमें देखेंगे जिससे उन्हें पता चल जायगा कि कुंदकुंद, समन्तभद्र आदि जैसे अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक आचार्योंने गृहस्थोंको सिद्धान्त शास्त्र पढ़नेका प्रतिषेध नहीं किया, किन्तु खूब उपदेश दिया है। तथा सिद्धान्त अध्ययनका प्रतिषेध करनेवाले जो ग्रंथ हैं वे बहुत पीछेके १२ वी शताब्दि और उसके पश्चात्के अत्यन्तसाधारण लेखकों द्वारा रचे गये हैं; और उन्होंने भी यह कहीं नहीं कहा कि धवल–जयधवल ग्रंथ ही सिद्धान्त ग्रंथ हैं, व गोम्मटसारादि सिद्धान्त ग्रंथ नहीं हैं। यह सब उक्त पुस्तिकाके लेखककी ही मौलिक कल्पना है जिसका यथार्थ मर्म वे ही जानें। स्वयं धवलादि सिद्धान्त ग्रंथोंमें बार बार यह कहा गया है कि इन ग्रन्थोंकी रचना, सर्व प्राणियोंके हितके लिये, मनुष्यमात्रके उपयोगके लिये मूर्खसे मूर्ख और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् पुरुषोंके उपकारार्थ हुई है। अतएव उनके पठन-पाठनका सभीको पूरा अधिकार है।

पूर्व-प्रकाशित द्रव्यप्रमाणानुगममें जो गणित आया है, और उसके संबंधमें हमें जो कुछ सहायता लखनऊ विश्वविद्यालयके गणिताध्यापक **डॉ. अवधेश नारायण सिंह** जीसे मिली थी उसका हम उसी भागमें उल्लेख कर आये हैं। वहां हमारे अंग्रेजी नोटमें हमने यह भी कहा था कि डॉ. साहब उस गणितका विशेष अध्ययन कर रहे हैं। हमें बड़ा हर्ष है कि डॉ. सिंहजीने अब अपने अध्ययनका फल इस भागमें पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कर दिया है। उन्होंने उस भागकी गणित पर अंग्रजीमें एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर हमें भेजा है जो इस भागमें प्रकट हो रहा है। उससे पाठक समझ सकेंगे कि जैनियोंके द्वारा भारतीय गणितशास्त्रमें कितनी उन्नति हुई है, और धवलाके अन्तर्गत गणितशास्त्र किस कोटिका है। अगले भागमें हम इस लेखका पूरा हिन्दी अनुवाद भी अपने पाठकोंको भेंट करेंगे, और उसमें प्रस्तुत भागके क्षेत्रमिति संबंधी गणित पर भी ऐसा ही विद्वत्तापूर्ण लेख सम्मिलित करेंगे। इस सहयोगके लिये हम डॉ. सिंहके बहुत ऋणी हैं।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवट्ठाणकी तीन प्ररूपणाएं आये हैं– क्षेत्र, स्पर्शन और काल। इनमें क्रमशः ९२, १८५ और ३४२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग १०१, १२४ और ११५ शंका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करने के लिये क्रमशः ३५, १७ और ८ विशेषार्थ तथा २६ और २५ गणितके उदाहरण जोडे गये हैं। तुलनात्मक व पाठ-भेदसंबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः १९७, १४८ और २७६ है। इस प्रकार इस ग्रंथभागमें लगभग ३४० शंका-समाधान, ६० विशेषार्थ, ५२ गणितोदाहरण तथा ६२१ टिप्पण पाये जावेंगे।

इनमें और विशेषता: प्रथम दो प्ररूपणाओंमें द्रव्यप्रमाणप्ररूपणाके सदृश बहुतसा गणित भाग आया है। विशेषता यह है कि यहांका गणित प्रायः क्षेत्रमिति (Geometry) से संबंध रखता है, जब कि द्रव्यप्रमाणका गणित अंकगणितसंबंधी था। लोकके आकारसंबंधी मान्यताओंमें मतभेद और उनमें तथ्यातथ्य-निर्णयके लिये उनके घनप्रमाण लानेकी प्रक्रियाएं जैन करणानुयोगकी बिलकुल नई चीजें हैं। उसी प्रकार शंखक्षेत्र, गोह्मीक्षेत्र, भ्रमरक्षेत्र व मत्स्यक्षेत्रके घनफलकी प्रक्रियाएं भी ध्यान देने योग्य हैं : स्पर्शनप्ररूपणामें द्वीपसागरोंके विस्तार और तत्संबंधी चंद्रोंके प्रमाणका गणित भी बड़ा सूक्ष्म है और उनके गणितसूत्रोंसे संबंध रखता है।

इस सब गणितको विधिवत् समझने व समझानेमें हमें पुनः हमारे कालेजके गणित अध्यापक प्रोफेसर काशीदत्तजी पांडे से बहुत सहायता मिली है। जैसे परिश्रमसे उन्होंने द्रव्यप्रमाणके गणितको व्यवस्थित करा दिया था, वैसे ही उन्होंने यहां भी बड़ा योग दिया। लोकाकार संबंधी मतभेद व प्रमाणके गणितको समझनेके लिये हमें उस उस आकारके काष्ठादर्शी (wooden models) की आवश्यकता पडी जो हमारे प्रियमित्र, श्रद्धेय पं. सूरजभानुजी वकीलके सुपुत्र, कुलवंतरायजी जैनी के परिश्रमसे तैयार हो गये। उन्होंने उनके कुछ चित्रादि बनाकर भी दिये जिनसे विषयके स्पष्टीकरणमें हमें बडी सहायता मिली। उन्ही काष्ठादर्शो व चित्रोंके आधारसे तथा अन्य गणित परसे हमारे नगरके 'न्यू हाइस्कूल' के ड्राइंग मास्टर श्रीयुक्त एस. वाय. पतकी, डी. टी. सी. ने हमें वे वीस चित्र बनाकर दिये जिनके ब्लाक इस भागमें प्रकट किये जा रहे हैं, तथा जिनकी सहायतासे तत्संबंधी गणित हमारे पाठकोंको भी सुग्राह्य हो सकेगा। इस सब सहायताके लिये हम उक्त सज्जनोंके बहुत कृतज्ञ हैं। हमारी प्रतियोंकी साधन-सामग्री पूर्ववत् कायम है जिसके लिये हम अमरावती जैन मंदिर, सिद्धान्तभवन आरा तथा कारंजा ब्रह्मचर्याश्रमके अनुगृहीत हैं। हमारे संशोधनसहायक भी पूर्ववत् स्थिर हैं।

गत भागकी प्रस्तावनाके भीतर हमने एक शंका–समाधानका स्तम्भ भी रखा था जिसमें उस समय तक आई हुई चौवीस शंकाओंके उत्तर दिये गये थे। समालोचकोंने इस स्तम्भ पर

हर्ष प्रकट किया और आगे भी उसे नियत रखनेकी प्रेरणा की। किन्तु इस बार हमारे पास कोई विशेष शंकाएं नहीं आये। तब हमने इसके लिये पत्रोंमें एक सूचना निकाली, जिसके फलस्वरूप जो शंकाएं हमारे पास आये उनका हमने पूरा उपयोग किया है और प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनाके अन्तर्गत शंका-समाधान, एवं शुद्धिपत्रमें पूर्वभागोंके पाठका संशोधन उसकी सुपरिणाम है। इस ओर विशेषरूपसे रुचि दिखलानेके लिये श्रीयुक्त नानकचंदजी, खतौली, श्रीयुक्त रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर और श्रीयुक्त नेमिचंदजी वकील, सहारनपुर, को हम धन्यवाद देते हैं। यदि उनकी भेजी गई कोई शंकाएं या शुद्धियां, यहां सम्मिलित नहीं की गई हैं तो समझना चाहिए कि उनका संकलन पूर्वभागोंमें हो चुका है जिनका पाठकोंको सदैव ध्यान रखना चाहिए। कभी कभी शंकाकार हमसे ऐसा प्रश्न भी कर बैठते हैं कि अमुक बात अमुक प्रकार से क्यों नही कही या अमुक बात क्यों नही जोडी गई? इसके उत्तर में हम अपने पाठकोंका ध्यान केवल हमारे इस आदर्श की ओर आकर्षित करते हैं कि–

‘नामूलं लिख्यते किञ्चित्, नानपेक्षितमुच्यते’

इस महान् कार्यमें हमें अब उत्तरोत्तर कठिनाइयोंका अनुभव हो रहा है। जैसा कि हम पूर्व भागमें प्रकट कर चुके हैं, हमारे एक सहयोगी पं. फूलचंद्रजी शास्त्री उस भागके सम्पूर्ण हो सकनेके पूर्व ही आकस्मिक विपत्तिके कारण यहांसे चले गये थे। तबसे वे फिर वापिस नहीं आसके। अतएव इस भागका संपूर्ण कार्य केवल पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीकी सहायतासे हुआ है। प्रूफ और प्रति मिलानमें तिलोयपण्णत्ति–विभागके कार्यकर्ता पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका साहाय्य रहा है। इधर यूरोपीय युद्धके कारण कागज आदिका भाव बेहद बढता गया। यथेष्ट कागज ठीक समय पर मिलना भी अशक्य हो गया। इतने पर अमरावती नगरमें साम्प्रदायिक झगडेने कुछ समयके लिये ऐसा भीषणरूप धारण किया कि आफिस और प्रेसका कार्य बंद रखना पडा। पुस्तकोंकी बिक्री भी इतनी नहीं हो रही जिससे आगेका कार्य चलता जावे। इससे हमारा फंड भी कुछ कुछ कम होता जा रहा है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंके प्रचारको रोकनेका भी जो प्रयत्न हो रहा है उसका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। किन्तु इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे कार्य अग्रेसर होता ही गया। हम कहां तक अपने आदर्शको स्थिर रख सके हैं, इसका निर्णय करना हमारे मर्मज्ञ पाठकोंके अधिकारमें है।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
१५–१२–४१

हीरालाल जैन